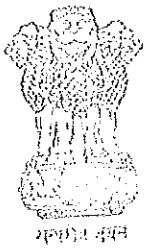

भारत सरकार

भारत
का
विधि
आयोग

न्यायाधीशों के मामलों I, II, III - ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149 में रिपोर्ट किए गए एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ मामले, 1993(4) एस. सी. सी. 441 में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम बनाम भारत संघ मामले और 1998 (7) एस. सी. सी. 739 में रिपोर्ट किए गए 1998 के विशेष निर्देश I - पर पुनः विचार करने के लिए प्रस्ताव ।

रिपोर्ट सं. 214

नवंबर, 2008

भारत का विधि आयोग

(रिपोर्ट सं. 214)

न्यायाधीशों के मामलों I, II, III - ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149 में रिपोर्ट किए गए एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ मामले, 1993(4) एस. सी. सी. 441 में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम बनाम भारत संघ मामले और 1998 (7) एस. सी. सी. 739 में रिपोर्ट किए गए 1998 के विशेष निर्देश I - पर पुनः विचार करने के लिए प्रस्ताव ।

केंद्रीय विधि और न्याय मंत्री, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्, अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग द्वारा 21 नवबर, 2008 को अग्रेषित किया गया ।

18वें विधि आयोग का 1 सितंबर, 2006 से तीन वर्ष की अवधि के लिए भारत सरकार के विधि और न्याय मंत्रालय के विधि कार्य विभाग, नई दिल्ली के तारीख 16 अक्तूबर, 2006 के आदेश सं. ए-45012/1/2006-प्रशा.III (वि.का.) द्वारा गठन किया गया था ।

विधि आयोग अध्यक्ष, सदस्य-सचिव, एक पूर्णकालिक सदस्य और 7 अंशकालिक सदस्यों से मिलकर बना है ।

अध्यक्ष

माननीय डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्

सदस्य-सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

पूर्णकालिक सदस्य

प्रो. डा. ताहिर महमूद

अंशकालिक सदस्य

डा. (श्रीमती) देविन्दर कुमारी रहेजा
डा. के. एन. चंद्रशेखरन पिल्लै
प्रो. (श्रीमती) लक्ष्मी जमभोलकर
श्रीमती कीर्ति सिंह
श्री न्यायमूर्ति आई. वेंकटनारायण
श्री ओ. पी. शर्मा
डा. (श्रीमती) श्यामल्हा पप्पू

विधि आयोग भारतीय विधि संस्थान भवन,
दूसरी मंजिल, भगवान दास रोड,
नई दिल्ली - 110 001 में अवस्थित है

विधि आयोग कर्मचारिवृंद

सदस्य - सचिव

डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल

अनुसंधान कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव एवं विधि अधिकारी
श्रीमती पवन शर्मा	:	अपर विधि अधिकारी
श्री जे. टी. सुलक्षण राव	:	अपर विधि अधिकारी
श्री ए. के. उपाध्याय	:	उप विधि अधिकारी
डा. वी. के. सिंह	:	सहायक विधि सलाहकार

प्रशासनिक कर्मचारिवृंद

श्री सुशील कुमार	:	संयुक्त सचिव एवं विधि अधिकारी
श्री डी. चौधरी	:	अवर सचिव
श्री एस. के. बसु	:	अनुभाग अधिकारी
श्रीमती रजनी शर्मा	:	सहायक पुस्तकालय और सूचना अधिकारी

इस रिपोर्ट का पाठ इंटरनेट पर http://www.lawcommissionofindia.nic.in पर उपलब्ध है

© सरकार का प्रतिलिप्यधिकार 2008
भारत का विधि आयोग
भारत सरकार
विधि और न्याय मंत्रालय
विधि कार्य विभाग
नई दिल्ली - 1100 01
भारत

इस दस्तावेज का पाठ (सरकारी चिह्नों को छोड़कर) किसी रूप विधान में या किसी माध्यम से निःशुल्क प्रत्युत्पादित किया जा सकता है परंतु यह कि उसको शुद्ध रूप से प्रत्युत्पादित किया जाए और उसका भ्रामक संदर्भ में उपयोग न किया जाए । इस सामग्री को सरकार के प्रतिलिप्यधिकार के रूप में अभिस्वीकार किया जाना चाहिए और दस्तावेज का नाम विनिर्दिष्ट किया जाना चाहिए ।

इस रिपोर्ट से संबंधित किसी पूछताछ के लिए सदस्य-सचिव को डाक द्वारा भारत का विधि आयोग, दूसरी मंजिल, भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवान दास रोड, नई दिल्ली- 110 001, भारत के पते पर या ई-मेल द्वारा : lci-dla@nic.in संबोधित किया जाना चाहिए ।

डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्
(भूतपूर्व न्यायाधीश, भारत का उच्चतम न्यायालय)
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

भा. वि. सं. भवन (दूसरा तल),
भगवान दास रोड,
नई दिल्ली-110001
टेली. : 91-11-23384475
फैक्स : 91-11-23383564

21 नवबर, 2008

आदरणीय श्री भारद्वाज जी

मैं इस पत्र के साथ ''न्यायाधीशों के मामलों I, II, III - ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149 में रिपोर्ट किए गए एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ मामले, 199(4) एस. सी. सी. 441 में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम बनाम भारत संघ मामले और 1998 (7) एस. सी. सी. 739 में रिपोर्ट किए गए 1998 के विशेष निर्देश I - पर पुनः विचार करने के लिए प्रस्ताव'' संबंधी हमारी 214वीं रिपोर्ट संलग्न कर रहा हूं । यह प्रस्ताव आयोग के सदस्यों के समक्ष आज 3.30 बजे अपराह्न में रखा गया था । आयोग के सदस्यों ने सम्यक रूप से विचार-विमर्श और चर्चा करने के पश्चात् एक मत से आयोग की रिपोर्ट का अनुमोदन किया है । आयोग ने, जैसाकि पहले कहा जा चुका है, इस विषय पर विधि की परीक्षा की है । संसदीय स्थायी समिति की विभिन्न सिफारिशों और विदेशी अधिकारिता जैसे अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा और केनिया की विधि पर भी, जहां कार्यपालिका न्यायाधीशों की नियुक्ति करने के लिए एक मात्र प्राधिकारी है या कार्यपालिका देश के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से नियुक्ति

करती है, विचार किया गया है ।

मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि आप इस रिपोर्ट पर विचार करें और शीघ्रतम आवश्यक कार्रवाई करें ।

चूंकि यह मामला अत्यधिक महत्व का है अतः मैं यह रिपोर्ट आज ही प्रस्तुत कर रहा हूं ।

सादर

भवदीय,

ह. –

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्)

श्री एच. आर. भारद्वाज,
केंद्रीय विधि और न्याय मंत्री,

न्यायाधीशों के मामलों I, II, III - ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149 में रिपोर्ट किए गए एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ मामले, 1993(4) एस. सी. सी. 441 में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम बनाम भारत संघ मामले और 1998 (7) एस. सी. सी. 739 में रिपोर्ट किए गए 1998 के विशेष निर्देश I - पर पुनः विचार करने के लिए प्रस्ताव ।

प्रस्तावना : भाग - I

1. पुनर्विचार क्यों ? उच्चतम न्यायालय ने **सुभाष शर्मा** बनाम **भारत संघ** (जिसे 1991(1) सप्ली. एस.सी.सी. 594 में रिपोर्ट किया गया था) में, जिसकी अध्यक्षता मुख्य न्यायमूर्ति रंगनाथ मिश्रा ने की थी, न्यायाधीश एन. एन. वैंकटचलैय्या और न्यायाधीश एम. एम. पुंछी ने, **एस. पी. गुप्ता** बनाम **भारत संघ** (जिसे 1982 एस. सी. 149 में रिपोर्ट किया गया था) न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में 'परामर्श' शब्द के निर्वचन की शुद्धता के बारे में निम्नलिखित शब्दों में (उक्त निर्णय के पैरा 43 और पैरा 49 में) संदेह प्रकट किए थे, :-

''शब्द 'परामर्श' का एक संवैधानिक उपबंध में उस संवैधानिक उच्चपदस्थ की प्रास्थिति को मान्यता में उपयोग किया गाया है, जो न्यायाधीशों की नियुक्ति का मार्ग-दर्शित करने वाली संस्थागत

प्रक्रिया के परिणाम को औपचारिक रूप से प्रकट करता है । उस अभिव्यक्ति को उसकी संवैधानिक पृष्ठभूमि और प्रयोजन से काट कर उसकी शाब्दिक सीमा तक सीमित करना ऐसा ही है जैसे न्यायाधीश फ्रेंक फर्टर की उक्ति ''शब्दों की आवाज में अटक कर रह जाना '' को उधार लेना ।

उस मामले में न्यायाधीशों ने यह राय प्रकट की थी कि ''न्यायिक पुनर्विलोकन आधारभूत संवैधानिक संरचना का एक भाग है और आवश्यक भारतीय संवैधानिक नीति का आधारभूत लक्षण है । आवश्यक संवैधानिक सिद्धांत स्वयं कार्यपालिका खंड की किसी प्रमुखता को निर्वाचक के प्रति उसके राजनैतिक उत्तरदायित्व के आधार पर न्यायोचित नहीं ठहराता है या आवश्यक नहीं बनाता है । इसके विपरीत जो आवश्यक है वह न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति और स्फूर्ति की पुष्टि करने वाला निर्वचन है । कतिपय परिस्थितियों के अधीन यह कहा जा सकता है कि सरकार न्यायिक खंड द्वारा इस प्रकार सिफारिश किए गए किसी न्यायाधीश की नियुक्ति करने के लिए आबद्ध नहीं है । किंतु कार्यपालिका के लिए किसी व्यक्ति को राज्य के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अनुमोदित न किए जाने या सिफारिश न किए जाने के बावजूद नियुक्त करने की शक्ति को अनुध्यात करना पूर्ण रूप से अनुचित होगा और शक्ति के किसी मनमाने प्रयोग का कारण बनेगा । पुनः,

जब कभी किसी राज्य के मुख्य न्यायमूर्ति और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के बीच मतभेद हो तो - इस निमित्त कुछ ठोस कारण अन्य तीन न्यायाधीशों द्वारा उपवर्णित किए गए हैं, उनकी राय में - भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय की प्रभावशाली भूमिका होनी चाहिए । हमारा विचार है कि चयन की प्रक्रिया में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की प्रमुखता चयन की क्वालिटी में सुधार करेगी । 'परामर्श' का प्रयोजन न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सुरक्षित करना और उचित व्यक्तियों के चयन को सुनिश्चित करना है । अतः मामले के बारे में यह नहीं समझा जाना है कि अंतिम कथन कार्यपालक सरकार का अनन्य परमाधिकार है । राज्य के न्यायिक अंग से समुचित संवैधानिक कृत्यकारियों की सिफारिशों की भूमिका समान रूप से महत्वपूर्ण है । 'परामर्श' को संवैधानिक प्रयोजन की पूर्ति करने के लिए शक्ति - स्रोत होना चाहिए और उसे शाब्दिक निर्वचन द्वारा निरर्थक नहीं बनाया जाना चाहिए । कौन उन विधिज्ञों के गुणों का, जिन्हें न्यायपीठ तक उन्नति करके ले जाने का प्रस्ताव है, विनिश्चय करने में उन विशिष्ट न्यायालयों के न्यायाधीशों से अधिक योग्य हो सकता है जिनके सामने वे विधि व्यवसाय करते हैं । इस बात के लिए अधिक महत्व के और विवश करने वाले विचारण है कि राज्यों के मुख्य न्यायमूर्तियों और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विचारों को क्यों विनिश्चयात्मक रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए जब तक कि कार्यपालिका के पास ऐसी कोई सामग्री

न हो जो यह दर्शित कर सके कि नियुक्ति अन्यथा अवांछनीय है (पैरा 44) ।

वह विचार जिसको चार विद्वान् न्यायाधीशों ने गुप्ता के मामले में आपस में बांटा, हमारी राय में, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की संस्था की विशेष और केंद्रीय स्थिति को मान्यता नहीं देता है (पैरा 45) परामर्श की प्रास्थिति और महत्व से संबंधित एस. पी. गुप्ता के मामले में बहुमत की राय की शुद्धता पर, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की स्थिति की प्रमुखता पर और इस विचार पर कि न्यायाधीश की संख्या का नियतन न्यायालय में विचार योग्य नहीं है, बड़ी न्यायपीठ द्वारा पुनः विचार किया जाना चाहिए । (पैरा 45) इस पर जोर दिया गया है ।

निर्देश के आदेश का प्रवर्तनशील भाग पैरा 49 में अंतर्विष्ट है, ''जैसा हमारी राय में है कि एस. पी. गुप्ता के मामले में बहुमत की शुद्धता पर बड़ी न्यायपीठ द्वारा विचार किया जाना चाहिए, हम निदेश देते हैं कि 1987 की रिट याचिका सं. 1303 के कागज-पत्रों को विद्वान् मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष 9 न्यायाधीशों की उस न्यायपीठ का गठन करने के लिए रखा जाना चाहिए, जो उन दो प्रश्नों की परीक्षा करेगी जिनके प्रति हमने ऊपर निर्देश किया है अर्थात् प्रमुखता के प्रति निर्देश से भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की स्थिति और द्वितीयतः न्यायाधीशों की संख्या के नियतन का न्यायालय में विचार

योग्य होना'' ।

माननीय न्यायपीठ ने पैरा 51 में यह स्पष्ट किया है कि :

हम यह स्पष्ट करते हैं कि उन दो प्रश्नों से पृथक जिन्हें हमने उपदर्शित किया है सभी अन्य पहलू, जिन पर हमने विचार किया है, हमारे वर्तमान आदेश द्वारा अंतिम होने के लिए आशयित है (इस पर जोर दिया गया है) ।

अतः नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ को केवल दो प्रश्न निर्दिष्ट किए गए थे अर्थात् (I) प्रमुखता के प्रति निर्देश से भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की स्थिति और (II) न्यायाधीश-संख्या के नियतन का न्यायालय में विचार योग्य होना । इस पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि कोई अन्य प्रश्न बड़ी न्यायपीठ को निर्दिष्ट नहीं किया गया था ।

2. प्रथम न्यायाधीशों का मामला **एस. पी. गुप्ता** बनाम **भारत संघ और अन्य** का है । इस समय यह जानना सुसंगत हो सकता है कि उस न्यायपीठ में, जिसकी अध्यक्षता पी. एन. भगवती ने की थी, न्यायाधीश एस. सी. गुप्ता, न्यायाधीश एस. एम. फजल अली, न्यायाधीश वी. डी. तुलजापुरकर, न्यायाधीश डी. ए. देसाई, न्यायाधीश आर. एस. पाठक और न्यायाधीश ई. एस. वैंकट रमैया के बहुमत के

निर्णय द्वारा एस. पी. गुप्ता के मामले में क्या विनिश्चित किया गया था, जिसकी शुद्धता के बारे में सुभाष शर्मा के मामले में संदेह व्यक्त किया गया था ।

न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती द्वारा संविधान के अनुच्छेद 217 में आने वाली 'परामर्श' अभिव्यक्ति के संबंध में स्वयं की ओर से बोलते हुए दिए गए बहुमत निर्णय का सुसंगत भाग नीचे उद्धरित किया जाता है :-

"तीनों संवैधानिक कृत्यकारियों में से प्रत्येक उच्च संवैधानिक पदधारण करता है और अनुच्छेद 217 का खंड (1) उपबंध करता है कि किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति कृत्यकारियों से परामर्श करने के पश्चात्, एक के ऊपर दूसरे की राय को श्रेष्ठता समनुदेशित किए गए बिना, की जाएगी । यह सच है कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति भारतीय न्यायपालिका का शीर्ष है और प्रतीकात्मक रूप में न्यायाधीशों के भ्रातृत्व के कुलपिता के रूप में वर्णित किया जा सकता है किंतु किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति भी समान रूप से महत्वपूर्ण संवैधानिक कृत्यकारी है और यह कहना संभव नहीं है कि जहां तक परामर्श संबंधी प्रक्रिया का संबंध है, वह किसी भी रूप में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से कम महत्वपूर्ण है । वास्तव में संवैधानिक स्कीम के अधीन किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के प्रशासनिक अधीक्षण के

अधीन नहीं है और न वह भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पर्यवेक्षण के नियंत्रण के अधीन है .....।

यदि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय को प्रमुखता देनी है तो यह, प्रभावी रूप में और सारतः, सहमति के बराबर होगा क्योंकि उसे प्रमुखता देने का यह अर्थ होगा कि उसकी राय उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति और राज्य के राज्यपाल के ऊपर अधिभावी होनी चाहिए जिसका अर्थ यह है कि केंद्रीय सरकार को उसकी राय अवश्य स्वीकार करनी चाहिए । किंतु यह केवल परामर्श है और न कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति, जैसाकि अनुच्छेद 217 के खंड (1) में उपबंधित किया गया है (पैरा 29) (इस पर जोर दिया गया है) । उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के संबंध में राष्ट्रपति से सिफारिश करने के लिए एक कॉलेजियम (न्यायाधीश समिति) अवश्य होना चाहिए । सिफारिश करने वाले प्राधिकारी को व्यापक हितों के साथ परामर्श करनी चाहिए । यदि कॉलेजियम ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बना है जिनके पास उन व्यक्तियों के बारे में, जो न्यायपीठ में नियुक्ति के लिए उपयुक्त हो सकते हैं और जिनके पास नियुक्ति के लिए अपेक्षित अर्हताएं हैं और यह अंतिम अपेक्षा पूर्ण रूप से आवश्यक है, जानकारी रखने की अपेक्षा की जा सकती है - तो यह सही प्रकार के ऐसे न्यायाधीशों को, जो यथार्थतः स्वतंत्र होंगे और जो महत्वपूर्ण

रूप से न्यायिक प्रक्रिया अपनाएंगे और वंचित तथा शोषित मानव समदुय के लिए अर्थ रखेंगे, प्राप्त करने में दूरदर्शितापूर्ण होगा'' (पैरा 30) ।

न्यायाधीश संख्या नियत करने के संबंध में बहुमत वाले निर्णय का यह विचार था कि यह न्यायालय में विचार योग्य नहीं है और इस बारे में कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता । तथापि इस पहलू ने अपना महत्व खो दिया है क्योंकि सुभाष गुप्ता के मामले में महान्यायवादी ने यह कथन किया था कि सरकार को माननीय न्यायालय द्वारा इस प्रश्न का विचारण किए जाने में कोई आपत्ति नहीं थी ।

3. दूसरा न्यायाधीश मामला - **उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम और अन्य** बनाम **भारत संघ** का है । (जिसको 1993(4) एस. सी. सी. 441 में रिपोर्ट किया गया था)

यह इस पृष्ठभूमि में है कि 9 न्यायाधीशों की न्यायपीठ का गठन किया गया था और निर्णय 16.10.1993 को दिया गया था । यह निर्णय 306 पृष्ठों में था और निर्देश के आदेश से काफी आगे तक गया था । प्रसिद्ध न्यायविद् स्वर्गीय एच. एम. सीरवाई ने अपनी भारत की संवैधानिक विधि, चतुर्थ संस्करण, रजत जयंती संस्करण (वॉल्यूम-I) में इस निर्णय की आलोचना की है और इसे 'अकृत और

शून्य' कहा है क्योंकि इसने अनुच्छेद 145(4) और (5) के आदेशात्मक उपबंधों का अनुसरण नहीं किया - (जैसा कि न्यायाधीश एम. एम. पुंछी के विसम्मत निर्णय से स्पष्ट है, जिसका सुसंगत भाग आगे के पैरा में पुनरुत्पादित किया गया है) - जो कि रूप या तकनीकी का विषय नहीं है किंतु सार का विषय है, जैसा कि **मुहम्मद अकिल** बनाम **आजाद उनिस्सा बीबी** के मामले में मुख्य न्यायमूर्ति सर वार्नेस पीकॉक द्वारा नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ के लिए इस मुद्दे पर बोलते हुए बताया गया है । ''यह केवल तकनीकी आपत्ति नहीं है किंतु ऐसे मौलिक सिद्धांत पर आधारित है जो न्याय के सम्यक प्रशासन के लिए अनिवार्य है, यह कि प्रत्येक न्यायिक कार्य, जो कि कई न्यायाधीशों द्वारा किया जाता है, उनमें से सभी की उपस्थिति में पूरा किया जाना चाहिए .....। यदि विचार-विमर्श के पश्चात् और एक दूसरे के तर्कों को सोच-समझकर तौलने के पश्चात् न्यायाधीश सहमत नहीं हो सकते तो उनके विभिन्न निर्णय दूसरों की उपस्थिति में खुले न्यायालय में सुनाए जाने चाहिए'' । (वाईमैन की रिपोर्ट वॉल्यूम- 5 पृष्ठ 69, जिसे **रोहिल खंड कुमाऊं बैंक लि.** बनाम **रो** (1884) 6 इलाहाबाद 468 से 474 पर उद्धृत किया गया है (जिसे सीरवाई की भारत की संवैधानिक विधि, चतुर्थ संस्करण वॉल्यूम - 3 से लिया गया है) ।

प्रसिद्ध न्यायविद इस निर्णय को 'अकृत्य और शून्य' कहता है

(कृपया एच. एम. सीरवाई द्वारा लिखित भारत की संवैधानिक विधि, वॉल्यूम -3 चौथा संस्करण के पृष्ठ 2936 को देखिए) ।

इस प्रक्रम पर न्यायमूर्ति एम.एम. पुंछी के उस विसम्मत निर्णय के, जो पूर्ववर्ती पैराओं में निर्दिष्ट किया गया है, प्रारंभिक पैरा में अंतर्विष्ट शिकायत को नोट करना आवश्यक है, जो 1993 (4) एस. सी. सी. 441 के पैरा 488 पर है ।

''पैरा 488 - न्यायाधीश एम. एम. पुंछी (विसम्मत) - यह राय उपसंहार की प्रकृति की है, यद्यपि कठोर रूप से उस अर्थ में नहीं है । इस न्यायपीठ को किए गए निर्देश के अधीन दोनों विषयों पर और साथ ही दूसरों पर निर्देश के बिना बहुत कुछ पहले ही लिखा जा चुका है । मैं अपनी ओर से इस संबंध में कुछ और जोड़ने से बचना पसंद करूंगा किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि घटनाओं का क्रम मुझे कोई विकल्प नहीं देता है । मैं अनुभव करता हूं कि जो कुछ कहे जाने की आवश्यकता है उसका योगदान करने से सेक लेना और बिना कहे छोड़ देना लापरवाही होगी (इस पर जोर दिया गया है) ।

पैरा 490 - ''यह 9 न्यायाधीशों की न्यायपीठ 7 अप्रैल, 1993 से इस महत्वपूर्ण मामले को सुनने के लिए बैठी थी और उसने 11 मई, 1993 को, ग्रीष्म अवकाश के प्रारंभ होने के नजदीक, अपनी

सुनवाई समाप्त की थी । मुझे ऐसा विश्वास था कि हम सभी, 12 जुलाई, 1993 के पश्चात्, न्यायालय के पुनः खुलने पर, यदि उससे पूर्व नहीं तो, एक साथ बैठेंगे और कुछ अर्थपूर्ण बैठकें करेंगे, जिसमें प्रत्येक ऐसे विषय पर स्वतंत्र और स्पष्ट विचार-विमर्श होगा, जिसने हमारा ध्यान अकर्षित किया था जिससे इस न्यायालय से संबंधित, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की संस्था से मुख्य रूप से संबंधित इस ऐतिहासिक मामले में सर्वसम्मति से विनिश्चय के लिए प्रयास किया जा सके । तथापि मैं वास्तव में पीछे रह गया था जब मुझे 14 जून, 1993 को मेरे विद्वान् भाई न्यायाधीश जे. एस. वर्मा द्वारा स्वयं के लिए और मेरे विद्वान् न्यायाधीश भाइयों योगेश्वर दयाल, जी. एन. रे, डा. ए. एस. आनंद और एस. पी. भरुचा की ओर से लिखा गया राय का प्रारूप प्राप्त हुआ । यह संपन्न किया गया कार्य स्तम्भित कर देने वाली वास्तविकता प्रतीत हुआ और बहुमत की राय पूर्णता । वे आशाएं जो मैंने स्वतंत्र और स्पष्ट विचार-विमर्श के बारे में रखी थी वे लुप्त हो गईं । किंतु तत्पश्चात् तारीख 24 अगस्त, 1993 को मेरे विद्वान् भाई न्यायाधीश अहमदी की राय निराशा के पर्वत से आशा की एक किरण की तरह फूट कर निकली और उसके पश्चात् क्रमशः मेरे विद्वान् भाई न्यायाधीश कुलदीप सिंह और न्यायाधीश पांडियान की राय क्रमशः तारीख 7 सितंबर, 1993 और 9 सितंबर, 1993 को आईं । इसके पश्चात् कोई अर्थपूर्ण बैठक संभव नहीं थी क्योंकि उस समय तक विचारों का ध्रुवीकरण हो गया मालूम होता

था । इस प्रकार अब आठ भाइयों की दृढ़ राय, जैसाकि मुझे संसूचित किया गया था, पता लग गई थी । इन रायों से भारग्रस्त होकर, मैं अपनी स्वयं की राय, प्रारंभ किए गए साहसिक कार्य के लिए कर्तव्य के रूप में अधिक, प्रकट करने के लिए बैठा, क्योंकि मैं, निर्दिष्ट किए जाने वाले का पक्षकार होने के नाते असीमित रूप से इसके लिए ऋणी था ।''

पैरा 491 - ''प्रारंभ में, मुझे **एस. पी. गुप्ता** बनाम **भारत संघ** के निर्दिष्ट पुनः शुद्धता के आदेश की अंतर्वस्तुओं और केंद्रबिन्दु से संबंधित भ्रम को अवश्य दूर करना चाहिए, यह वह राय है, जो तत्कालीन भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, श्री रंगनाथ मिश्रा द्वारा लिखी गई थी और जिससे भारत के वर्तमान मुख्य न्यायमूर्ति श्री एम. एन वैंकटचलैय्या (तत्कालीन अवर न्यायाधीश के रूप में) और मेरे द्वारा सहमति जताई गई थी । हमने नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ को केवल दो प्रश्न निर्दिष्ट किए थे अर्थात्, परामर्श की प्रास्थिति और महत्व से संबंधित एस. पी. गुप्ता के मामले में बहुमत की राय की शुद्धता के और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की स्थिति की प्रमुखता के परीक्षण का और यह कि क्या न्यायाधीश संख्या का नियतन न्यायालय में विचारणयोग्य नहीं था, ऐसा अंतिम पैरे में यह स्पष्ट करते हुए किया गया था कि पहले उपदर्शित दोनों प्रश्नों से पृथक सभी अन्य पहलू, जिन पर विचार किया गया था, उक्त आदेश द्वारा

थे । जैसा मैं इसे देखता हूं इसके निबंधनों की कठोरता के कारण, सिवाए उन दो प्रश्नों के जो विनिर्दिष्ट रूप से निर्दिष्ट किए गए थे, कोई अन्य विषय परीक्षण के लिए खुला नहीं था जैसा कि किया गया प्रतीत होता है (पूर्ण पाठ संक्षिप्तता के कारण उद्धृत नहीं किया गया है । कृपया निर्णय का पृष्ठ 712 देखें) ।

अपने सहमतिपूर्ण निर्णय के अंतिम पैरा में न्यायाधीश कुलदीप सिंह, जिन का निर्णय बाद में 7 सितंबर, 1993 को आया था (जबकि मौलिक बहुमत वाले निर्णय पर 14 जून, 1993 को हस्ताक्षर किए गए थे) निम्नलिखित संप्रेक्षण करते हैं ''निर्णय से पृथक होने के पूर्व यह कहना समुचित होगा कि न्यायाधीश वर्मा द्वारा परिचालित राय उन न्यायाधीश भाइयों के बीच व्यापक विचार-विमर्श पर निर्भर थी, जो उपलब्ध थे और जिन्होंने विचार-विमर्श में भाग लिया था । यद्यपि न्यायाधीश वर्मा ने अपने मूल प्रारूप में विभिन्न सुझावों को शामिल किया था किंतु मेरे मस्तिष्क में एक भावना रह गई थी कि मुझे न्यायाधीश वर्मा द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के समर्थन में कुछ और कहना है और इस तरह एक पृथक राय लिखने के लिए मैंने आगे बढ़ने का साहस किया ।''

अतः यह स्पष्ट है कि कोई विचार-विमर्श नहीं किया गया था, कोई विचारों के आदान-प्रदान के लिए बैठक नहीं हुई थी और 14 जून, 1993 को नौ न्यायाधीशों के बीच कोई सहमति नहीं थी जब अंतिम

1993 को नौ न्यायाधीशों के बीच कोई सहमति नहीं थी जब अंतिम प्रारूप निर्णय पर न्यायाधीश वर्मा द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, जिन्होंने स्वयं के लिए और न्यायाधीश योगेश्वर दयाल, न्यायाधीश जी. एन. रे, न्यायाधीश डा. ए. एस. आनंद और न्यायाधीश एस. पी. भरुचा की ओर से बोला । अतः यह निर्णय सादा रूप से अनवधानता के कारण हुआ है ।

4. न्यायाधीश वर्मा की अध्यक्षता में बहुमत निर्णय द्वारा क्या विनिश्चित किया गया था ?

एस. पी. गुप्ता के मामले में न्यायाधीश भगवती द्वारा दिए गए सुझाव का अनुसरण करते हुए कि एक 'कालेजियम' होना चाहिए जिससे भारत के न्यायमूर्ति द्वारा प्रत्येक नियुक्ति में परामर्श की जानी चाहिए, नौ न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने, न्यायाधीश वर्मा के माध्यम से बोलते हुए निम्नलिखित चौदह निष्कर्ष अधिकथित किए जो यथा निम्नलिखित है :-

1. उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया नियुक्ति के लिए उपलब्ध सर्वोत्तम और अत्यधिक उपयुक्त व्यक्तियों का चयन करने के लिए एकीकृत 'भाग लेने वाली परामर्शात्मक प्रक्रिया है' ; और सभी संवैधानिक कृत्यकारियों को किसी सहमत विनिश्चय पर

प्रथमतः पहुंचने की दृष्टि से सामूहिक रूप से इस कर्तव्य का निष्पादन करना चाहिए, जिससे संवैधानिक प्रयोजन की पूर्ति हो और जिससे कि प्रमुखता का अवसर उत्पन्न न हो ।

2. उच्चतम न्यायालय की दशा में नियुक्ति के लिए प्रस्ताव का प्रारंभ भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा ही होना चाहिए और उच्च न्यायालय की दशा में उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा होना चाहिए, और किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश/मुख्य न्यायमूर्ति के स्थानांतरण के लिए प्रस्ताव भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा प्रारंभ किया जाना चाहिए । यह रीति है जिसमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में नियुक्तियों के लिए और साथ ही उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों/मुख्य न्यायमूर्तियों के स्थानांतरणों के लिए प्रस्ताव सदैव किए जाने चाहिए ।

3. संवैधानिक कृत्यकारियों द्वारा विरोधी राय प्रकट किए जाने की दशा में न्यायपालिका की राय, जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विचार का प्रतीक हो और ऊपर दर्शित रीति से बनाई गई हो, प्राथमिकता रखती है ।

4. उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय के लिए किसी न्यायाधीश की कोई नियुक्ति नहीं की जा सकती जब तक

5. ऊपर कथित ऐसे कठोर विश्वासप्रद कारणों से, जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को प्रकट किए गए हों, जो यह दर्शित करते हों कि सिफारिश किया गया व्यक्ति नियुक्ति के लिए उपयुक्त नहीं है केवल अपवादात्मक मामलों में, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा सिफारिश की गई नियुक्ति नहीं की जा सकती है । तथापि यदि कथित कारण भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों द्वारा, जिन से उस विषय में परामर्श की गई है, स्वीकार नहीं किए जाते हैं तो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की गई सिफारिश की पुनरावृत्ति पर, नियुक्ति एक स्वस्थ परिपाटी के रूप में की जानी चाहिए (इस पर जोर दिया गया है) ।

6. भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के पद पर नियुक्ति उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश की होनी चाहिए जिसे पदधारण करने के उपयुक्त समझा गया हो ।

7. भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय केवल प्रमुखता ही नहीं रखती है किंतु उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों/मुख्य न्यायमूर्तियों के मामले में अवधारण योग्य है ।

8. स्थानांतरित न्यायाधीश/मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति एक उच्च न्यायालय से दूसरे में पहले या किसी पश्चात्वर्ती अंतरण के

8. स्थानांतरित न्यायाधीश/मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति एक उच्च न्यायालय से दूसरे में पहले या किसी पश्चात्वर्ती अंतरण के लिए अपेक्षित नहीं है ।

9. भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की सिफारिश पर किया गया कोई स्थानांतरण दंडात्मक नहीं समझा जाना है और ऐसा स्थानांतरण किसी आधार पर न्यायालय में विचार योग्य नहीं है ।

10. सभी नियुक्तियाँ और स्थानांतरण करने में उपदर्शित मानकों को अपनाया जाना चाहिए । तथापि वे किसी को न्यायालय में विचार करने योग्य किसी अधिकार को प्रदान नहीं करते हैं ।

11. पहले विनिर्दिष्ट आधारों पर केवल सीमित न्यायिक पुनर्विलोकन नियुक्तियों और स्थानांतरणों के मामलों में उपलब्ध है ।

12. किसी न्यायाधीश की प्रारंभिक नियुक्ति उससे भिन्न किसी उच्च न्यायालय में, जिसके लिए प्रस्ताव का प्रारंभ किया गया था, की जा सकती है ।

13. उच्च न्यायालय में न्यायाधीश संख्या का नियतन न्यायालय में विचार योग्य है किंतु केवल उस सीमा तक और उस रीति में

जो उपदर्शित की गई है ।

14. **एस. पी. गुप्ता** बनाम **भारत संघ** में बहुमत की राय, जहां तक वह नियुक्तियों और स्थानांतरणों के मामलों में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की भूमिका की प्रमुखता और इन मामलों के न्यायालय में विचार योग्य होने तथा साथ ही न्यायाधीश संख्या, के संबंध में विरोधी विचार प्रकट करती है, तो वह स्वयं की हमारे सामने सही दृष्टिकोण होने के रूप में प्रशंसा नहीं करती है । संविधान के सुसंगत उपबंधों का, जिनके अंतर्गत संवैधानिक स्कीम है, अवश्य वह अर्थ लगाया जाना चाहिए, समझा जाना चाहिए और उन्हें उस रीति से कार्यान्वित किया जाना चाहिए, जो हमारे द्वारा यहां उपदर्शित की गई है (पैरा 486) ।

पैरा 487 कथन करता है कि इस संक्षेप को पूर्ववर्ती भाग के साथ पढ़ा जाना है, जहां निष्कर्षों में व्यापक रूप से उन कारणों को कथित किया गया है जिनका वस्तुतः यह अर्थ है कि पैरा 487 को ऊपर परिगणित निष्कर्षों के साथ पढ़ा जाना है और उनमें सम्मिलित किया जाना है । उक्त पैरा निम्नलिखित रूप में उपबंध करता है :-

''न्यायपालिका की राय का, जो 'भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के विचार का प्रतीक हो, क्या अर्थ है ?''

''इस राय को रुढ़िगत रीति से बनाया जाना है और रूढ़ि पर आधारित पिछली प्रक्रिया इसके लिए सुरक्षित मार्ग-दर्शक है । उच्चतम न्यायालय में नियुक्तियों से संबंधित मामलों में, परामर्शात्मक प्रक्रिया में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा दी गई राय उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों के विचारों को ध्यान में रखते हुए बनाई जानी है । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से यह भी आशा की जाती है कि वह उच्चतम न्यालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के विचारें को अभिनिश्चित करे, जिसकी राय अभ्यर्थी की उपयुक्तता का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण होने की संभावना है, इस तथ्य के कारण कि वह उसी उच्च न्यायालय से आया है या अन्यथा । अनुच्छेद 124 (2) इस बात का संकेत है कि उच्चतम न्यायालय के कुछ अन्य न्यायाधीशों के विचारों को अभिनिश्चित करना अपेक्षित है । अनुच्छेद 124(2) में अंतर्निहित उद्देश्य इस रीति से प्राप्त किया जाता है कि भारत का मुख्य न्यायमूर्ति अपनी राय बनाने में उनसे परामर्श करता है । अनुच्छेद 124(2) में यह उपबंध विद्यमान रूढ़ि के लिए आधार है जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से अपनी सिफारिश करने के पूर्व उच्चतम न्यायालय के कुछ न्यायाधीशों से परामर्श करने की अपेक्षा करती है । यह सुनिश्चित करता है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय केवल उसकी अपनी व्यक्तिगत राय नहीं है किंतु न्यायपालिका में शीर्षस्थ स्तर पर व्यक्तियों के एक निकाय द्वारा सामूहिक रूप से बनाई गई राय है ।

उच्च न्यायालयों में नियुक्तियों से संबंधित मामलों में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से आशा की जाती है कि वह उच्चतम न्यायालय के अपने ऐसे सहयोगियों के विचारों को ध्यान में रखें, जिनके संबंधित उच्च न्यायालय के कार्यकलापों से अवगत होने की संभावना है । भारत का मुख्य न्यायमूर्ति उस उच्च न्यायालय के ऐसे एक या अधिक वरिष्ठ न्यायाधीशों के विचारों को भी अभिनिश्चित कर सकता है जिनकी राय, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के अनुसार उसकी राय बनाने में महत्वपूर्ण होने की संभावना है । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय, अधिकतम महत्व दिए जाने की हकदार होगी और अन्य अंतर्वलित कृत्यकारियों की राय को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय बनाने में सम्यक महत्व दिया जाना चाहिए । उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की राय उच्च न्यायालय के कम से कम दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों के विचार अभिनिश्चित करने के पश्चात् ही बनाई जानी चाहिए ।

भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को अपनी राय बनाने के लिए एक ऐसा अनुक्रम अपनाना होगा जो उसे उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के रूप में सर्वोत्तम उपलब्ध व्यक्तियों का चयन करने के लिए उद्देश्यपूर्ण रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में उसे समर्थ बनाएगा । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्तियों द्वारा अन्य न्यायाधीशों की राय का

अभिनिश्चित किया जाना और उनकी राय की अभिव्यक्ति किसी संदिग्धता से बचने के लिए लिखित रूप में होनी चाहिए ।

ऐसे सभी ब्यौरों और कारणों को पूर्ण रूप से समझने के लिए, जो ऊपर वर्णित निष्कर्षों में संक्षेपीकृत किए गए हैं, जिनकी स्पष्टता के कारण पुनरावृत्ति नहीं की जा रही है, कृपया निर्णय के पृष्ठ 702 से पृष्ठ 706 तक देखें । (1993(4) एस. सी. सी. 441 में रिपोर्ट किया गया **उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम** बनाम **भारत संघ**) ।

स्पष्ट रूप से न्यायालय ने निर्देश के आदेश से परे दूर तक उसका अतिक्रमण किया है और ऐसे बहुत से पहलुओं को अपने क्षेत्र में लिया है, जो निर्देश करने वाले आदेश में अनुध्यात नहीं किए गए थे । मामलों का स्पष्टीकरण करने के बजाए नौ न्यायाधीशों के निर्णय ने पहले से अधिक संदिग्धता का सृजन किया है ।

5. तीसरा न्यायाधीश मामला : (1998 का विशेष निर्देश सं. 1) जिसे (1998) (7) एस. सी. सी. 739 में रिपोर्ट किया गया था

भारत के राष्ट्रपति ने, जिसने दूसरे न्यायाधीश मामले में स्पष्टीकरण और जानकारी की अपेक्षा की थी, उच्चतम न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 143 के अधीन एक निर्देश किया, जो यथा

निम्नलिखित है :-

''यतः भारत के उच्चतम न्यायालय ने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों [भारत के संविधान का अनुच्छेद 124(2)], उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्तियों और न्यायाधीशों [अनुच्छेद 217(1)] की नियुक्ति के संबंध में और एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों के स्थानांतरण [अनुच्छेद 222 (1)] के संबंध में, **उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम** बनाम **भारत संघ** के मामले में सिद्धातों को अधिकथित किया है और प्रक्रिया संबंधी मानकों को विहित किया है ;

और यतः उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि के निर्वचन के बारे में संदेह उद्भूत हुए हैं और यह लोक हित में है कि न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा अंतरण से संबंधित उक्त संदेहों को दूर किया जाए ।

और यतः, उसको ध्यान में रखते हुए, जो इसमें इसके पूर्व कहा गया है, मुझे यह प्रतीत होता है कि विधि के निम्नलिखित प्रश्न उद्भूत हुए हैं और वे ऐसी प्रकृति के तथा ऐसे लोक महत्व के हैं कि यह समीचीन है कि उन पर भारत के उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त की जाए ;

अतः, अब, भारत के संविधान के अनुच्छेद 143 के खंड (1) द्वारा मुझे प्रदत्त की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए मैं, के. आर. नारायणन, भारत का राष्ट्रपति, निम्नलिखित प्रश्न भारत के उच्चतम न्यायालय को विचार करने के लिए और उन पर अपनी राय देने के लिए इसके द्वारा निर्दिष्ट करता हूं, अर्थात् :-

1. क्या अनुच्छेद 217(1) और अनुच्छेद 222(1) में 'भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के साथ परामर्श' अभिव्यक्ति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की वह राय बनाने में जो उक्त अनुच्छेद के अर्थानतर्गत परामर्श का गठन करती हो बहुसंख्या में न्यायाधीशों से परामर्श करने की अपेक्षा करती है ;

2. क्या न्यायाधीशों का स्थानांतरण पूर्वोक्त निर्णय में उच्चतम न्यायालय के इस संप्रेक्षण को दृष्टि में रखते हुए न्यायिक रूप से पुनर्विलोकनीय है कि 'ऐसा स्थानांतरण किसी आधार पर न्यायालय में विचार योग्य नहीं है' और उसका आगे संप्रेक्षण कि सीमित न्यायिक पुनर्विलोकन स्थानांतरण के मामलों में उपलब्ध है और न्यायिक पुनर्विलोकन का विस्तार तथा क्षेत्र ;

3. क्या अनुच्छेद 124(2), जैसा उसका उक्त निर्णय में निर्वचन किया गया है, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से अपेक्षा करता है कि वह केवल दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श करे या

क्या पिछली पद्धति के अनुसार व्यापक परामर्श होनी चाहिए ।

4. क्या भारत का मुख्य न्यायमूर्ति अपनी व्यक्तिगत हैसियत में, नियुक्ति के लिए सिफारिश किए गए किसी न्यायाधीश के नियुक्त न करने के लिए भारत सरकार द्वारा दी गई सभी सामग्रियों और सूचनाओं के संबंध में उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों के साथ परामर्श किए बिना अकेले ही कार्य करने के लिए हकदार है ;

5. क्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अपने ऐसे सहयोगियों से परामर्श की अपेक्षा, जिनकी उच्च न्यायालय के कार्यकलापों से अवगत होने की संभावना है, केवल उन न्यायाधीशों के प्रति निर्देश करती है, जिनके लिए वह उच्च न्यायालय मूल उच्च न्यायालय के रूप में है और उन न्यायाधीशों को अपवर्जित करती है, जिन्होंने अपने मूल या किसी अन्य न्यायालय से स्थानांतरण पर उस न्यायालय के किसी न्यायाधीश या मुख्य न्यायमूर्ति के पद को ग्रहण किया है ;

6. क्या उच्च न्यायालय के वरिष्ठ न्यायाधीशों की उच्चतम न्यायालय में उनकी नियुक्ति के संबंध में विधि सम्मत आशाओं की दृष्टि से, जैसा उक्त निर्णय में निर्दिष्ट किया गया है, वरिष्ठता के क्रम से विलगन को न्यायोचित ठहराने के लिए अपेक्षित 'कठोर

युक्तिसंगत कारण' को प्रत्येक ऐसे वरिष्ठ न्यायाधीश के संबंध में, जिसकी उपेक्षा की जाती है, उससे कनिष्ठ न्यायाधीश की सिफारिश करते समय अभिलिखित किया जाना है ।

7. क्या सरकार यह अपेक्षा करने के लिए हकदार नहीं है कि अन्य परामर्श किए गए न्यायाधीशों की राय पूर्वोक्त उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार लिखित में हो और यह कि उसे भारत सरकार को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अपने विचारों के साथ प्रेषित किया जाए ।

8. क्या भारत का मुख्य न्यायमूर्ति भारत सरकार को अपनी सिफारिश करने में परामर्श प्रक्रिया के मानकों और अपेक्षा का अनुपालन करने के लिए बाध्य नहीं है ;

9. क्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा परामर्श मानकों और प्रक्रियाओं का अनुपालन किए बिना की गई कोई सिफारिश भारत सरकार पर बाध्यकर है ?

नई दिल्ली — के. आर. नारायणन

तारीख : 23.7.1998 — भारत का राष्ट्रपति

नौ न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ गठित की गई थी जिसमें न्यायाधीश एस. पी. भरुचा, न्यायाधीश एम. के. मुखर्जी, न्यायाधीश एस. बी. मजूमदार, न्यायाधीश सूजाता वी. मनोहर, न्यायाधीश जी. टी. नानवती, न्यायाधीश एस. सगीर अहमद, न्यायाधीश के. वैंकटस्वामी, न्यायाधीश बी. एन. कृपाल, न्यायाधीश जी. बी. पटनायक थे और न्यायालय ने उक्त निर्देश का एकमत से निर्देश के पैरा 44 में निम्नलिखित रीति से उत्तर दिया :

"निर्देश द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रश्नों का अब उत्तर दिया जाता है किंतु हमें इस बात पर जोर देना चाहिए कि इन उत्तरों को इन निर्देशों के साथ पढ़ा जाना चाहिए -

1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 217(1) और अनुच्छेद 222(1) में अभिव्यक्ति "भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श" अपेक्षा करती है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय बनने में कई न्यायाधीशों के साथ परामर्श की जाए । भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की एकल व्यक्तिगत राय उक्त अनुच्छेदों के अर्थान्तर्गत 'परामर्श' का गठन नहीं करती ।

2. अवर न्यायाधीशों का स्थानांतरण न्यायिक रूप से केवल इस विस्तार तक पुनर्विलोकनीय है कि वह सिफारिश जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा इस निमित्त की गई है उच्चतम न्यायालय

के चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों के साथ परामर्श करके नहीं की गई है और/ या यह कि उस उच्च न्यायालय के, जिससे स्थानांतरण किया जाना है, मुख्य न्यायमूर्ति के और उस उच्च न्यायालय के, जिसको स्थानांतरण किया जाना है, मुख्य न्यायमूर्ति के विचार प्राप्त नहीं किए गए हैं ।

3. भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करने के लिए और किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या अवर न्यायाधीश का स्थानांतरण करने के लिए उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम अवर न्यायाधीशों के साथ परामर्श करके ही सिफारिश करनी चाहिए । जहां तक उच्च न्यायालय के लिए नियुक्ति का संबंध है, सिफारिश उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम अवर न्यायाधीशों के साथ परामर्श करके ही की जानी चाहिए ।

4. भारत का मुख्य न्यायमूर्ति नियुक्ति के लिए सिफारिश किए गए किसी न्यायाधीश की नियुक्ति न करने के लिए भारत सरकार द्वारा दी गई सामग्री और जानकारी के संबंध में उच्चतम न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों के साथ परामर्श किए बिना अपनी व्यक्तिगत हैसियत में एकल रूप से कार्य करने के लिए हकदार नहीं है ।

5. भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अपने ऐसे सहयोगियों से जिनके संबंधित उच्च न्यायालय के कार्यकलापों से अवगत होने की संभावना है, परामर्श करने की अपेक्षा केवल उन्हीं न्यायाधीशों के प्रति निर्देश नहीं करती है जिनका वह उच्च न्यायालय मूल उच्च न्यायालय है । यह उन न्यायाधीशों को भी अपवर्जित नहीं करती है जिन्होंने उस उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश या मुख्य न्यायमूर्ति का पद स्थानांतरण पर धारित किया है ।

6. ''ठोस विश्वासप्रद कारण'' ऐसे प्रत्येक वरिष्ठ न्यायाधीश के संबंध में, जिसे छोड़ दिया गया है, वरिष्ठता के क्रम से विचलन के लिए न्यायोचित्य के रूप में अभिलिखित नहीं किए जाने हैं । अभिलिखित जो किया जाना है वह सिफारिश के लिए सकारात्म कारण है ।

7. परामर्श किए गए अन्य न्यायाधीशों के विचार लिखित रूप में होने चाहिए और भारत सरकार को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा अपने विचारों के साथ उस विस्तार तक, जो उसकी राय के लिए उपवर्णित हो, पहुंचाए जाने चाहिए ।

8. भारत का मुख्य न्यायमूर्ति भारत सरकार को अपनी सिफारिश करने में, जैसा कि पहले कहा गया है, परामर्श प्रक्रिया के

संन्नियमों और अपेक्षाओं का अनुपालन करने के लिए बाध्य है।

9. यथा पूर्वोक्त, परामर्श प्रक्रिया के संन्नियमों ओर उसकी अपेक्षाओं का अनुपालन किए बिना भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा की गई सिफारिशें भारत सरकार पर आबद्धकर नहीं है (इस पर जोर दिया गया है) ।

भाग -II

न्यायाधीशों के मामलों I, II और III - ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149 में रिपोर्ट किए गए एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ मामले, 1993(4) एस. सी. सी. 441 में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम बनाम भारत संघ मामले और 1998 (7) एस. सी. सी. 739 में रिपोर्ट किए गए 1998 के विशेष निर्देश I - का विश्लेषण

1. न्यायाधीशों के तीन मामलों I, II और III - ए. आई. आर. 1982 उच्चतम न्यायालय 149 में रिपोर्ट किए गए एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ मामले, 1993(4) एस. सी. सी. 441 में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम बनाम भारत संघ मामले और 1998 (7) एस. सी. सी. 739 में रिपोर्ट किए गए 1998 के विशेष निर्देश I -, में उच्चतम न्यायालय ने वस्तुतः अनुच्छेद 124(2) और अनुच्छेद 217 को, जो क्रमशः उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति से संबंधित है, पुनः लिखा है । अनुच्छेद 124(2) का पाठ निम्नलिखित रूप में है :

124 (2) उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात्, जिनसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना आवश्यक समझे, राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक

न्यायाधीश को नियुक्त करेगा और वह न्यायाधीश तब तक पद धारण करेगा जब तक वह पैंसठ वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है :

परंतु मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से सदैव परामर्श की जाएगी :

217(1) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से, उस राज्य के राज्यपाल से और मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न किसी न्यायाधीश की नियुक्ति की दशा में उस उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करने के पश्चात्, राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर और मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश को नियुक्त करेगा और वह न्यायाधीश अपर या कार्यकारी न्यायाधीश की दशा में अनुच्छेद 224 में उपबंधित रूप में पद धारण करेगा और किसी अन्य दशा में तब तक पद धारण करेगा जब तक वह बासठ वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है ।

''कालेजियम (न्यायाधीश समिति)'' शब्द का संविधान में कहीं उपयोग नहीं हुआ है । इसका प्रथमबार न्यायमूर्ति भगवती द्वारा **एस. पी. गुप्ता** बनाम **भारत संघ** (4 : 3) के बहुमत से निर्णय में उपयोग किया गया था । पैरा 29 में ''सिफारिशें आदि करने के लिए अवश्य ही एक कालेजियम होना चाहिए'' ..... (पहले ही भाग -1 के पैरा 2 में उद्धृत किया जा चुका है) । पुनः राष्ट्रपतीय निर्देश में

अभिव्यक्ति 'कालेजियम' और 'न्यायाधीशों का कालेजियम' का मुक्त रूप से उपयोग किया गया है । (पैरा 15 और पैरा 22 कुछ उदाहरणों को उद्धृत करते हैं)

यह प्रस्तुत किया जाता है कि संविधान में शब्दों का कोई परिवर्धन उच्चतम न्यायालय की निर्वचन संबंधी अधिकारिता के अधीन अनुज्ञेय नहीं होगा । उच्चतम न्यायालय को संविधान का वैसे ही निर्वचन करना है जैसा वह है ।

2. न्यायाधीशों के दूसरे मामले में अधिकथित संन्नियमों के संबंध में उठाए गए संदेहों को स्पष्ट करने की आड़ में सलाहकार राय ने वस्तुतः अपने पूर्वतर विनिश्चय का पुनर्विलोकन किया है ।

यह सादर प्रस्तुत है कि सलाहकार राय में प्रकट की गई राय अनुच्छेद 124(2) की सादा भाषा के विरूद्ध है । अनुच्छेद जो कहता है वह यह है कि राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से और उच्चतम न्यायालय के या उच्च न्यायालय के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करेगा, जिनसे वह परामर्श करना आवश्यक समझता है । अनुच्छेद भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से भिन्न न्यायाधीशों की संख्या पर, जिनसे परामर्श ली जानी है, कोई अधिकतम सीमा या सीमा अधिरोपित नहीं करता है । राष्ट्रपति को हमेशा मंत्री परिषद की सहायता और सलाह पर कार्य करना चाहिए (अनुच्छेद 74) । तथापि उसके विरुद्ध जो

संविधान में कहा गया है, दोनों न्यायाधीश II और न्यायाधीश III के मामलों में यह अधिकथित किया गया है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श का अर्थ है एक कालेजियम जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और दो या चार न्यायाधीशों, यथास्थिति, से मिलकर बना हो । आगे दोनों मामलों में यह कहा गया था कि यह भारत का मुख्य न्यायमूर्ति है, जिसे न्यायाधीशों के कालेजियम के साथ परामर्श करनी चाहिए, जबकि संविधान कहता है कि राष्ट्रपति को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और ऐसे न्यायाधीशों से जिनसे वह आवश्यक समझे, परामर्श करनी चाहिए ।

3. तीन न्यायाधीशों के मामलों में अर्थात् उच्चतम न्यायालय के दो निर्णय और एक विशेष निर्देश पर राय, सभी में 'परामर्श' के क्षेत्र के बारे में विचार-विमर्श किया गया है और यह दूसरे न्यायाधीशों के मामले में था कि उच्चतम न्यायालय ने भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय के लिए, जिसे स्वयं भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के वरिष्ठ सहयोगियों के बीच परामर्श संबंधी प्रक्रिया पर आधारित होना था, 'प्रमुखता' की संकल्पना को विकसित किया । 'परामर्शात्मक' प्रक्रिया के विस्तार के बारे में न्यायालय की राय के लिए विशेष निर्देश की सुनवाई पर कार्यपालिका की ओर से यह स्वीकार किया गया था (और न्यायालय की राय में अभिलिखित किया गया था) कि सरकार दूसरे न्यायाधीशों के मामले में निर्णय का पुनर्विलोकन या पुनर्विचार

नहीं चाह रही थी और यह कि वह विशेष निर्देश में सम्मिलित प्रश्नों के न्यायालय द्वारा दिए गए उत्तरों को आबद्धकर (यद्यपि वह राय है न कि कोई विनिश्चय) के रूप में स्वीकार करेगी ।

4. विशेष निर्देश में उच्चतम न्यायालय की राय ने न केवल भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय की 'प्रमुखता' की संकल्पना को पुनः ठोस रूप में परिवर्तित किया बल्कि उन न्यायाधीशों की संख्या में भी वृद्धि कर दी जिनसे भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को अपनी राय देने के पूर्व परामर्श करनी चाहिए और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की राय पर, जिससे 'प्रमुखता' संलग्न थी, पहुंचने में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में मार्ग-दर्शक सिद्धांतों को ब्यौरेवार अधिकथित किया । वास्तव में इस प्रक्रिया ने 'प्रमुखता' को भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श किए जाने वाले न्यायाधीशों के समूह को अंतरित कर दिया ।

5. अब उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए कालेजियम में भारत का मुख्य न्यायमूर्ति और चार (दो के स्थान पर) न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश होंगे । उच्चतम न्यायालय के उस न्यायाधीश से भी, जो उस विशिष्ट उच्च न्यायालय से अवगत हो, परामर्श ली जानी चाहिए, जिससे यह संख्या बढ़कर छह होगई । समूह के बढ़े हुए आकार ने, जिसे कि परामर्श प्रक्रिया का भाग होना है, अंतर्वलित कई हितों के साथ परामर्श संबंधी प्रक्रिया को जटिल कर दिया और

रिक्त स्थानों को भरने में विलंब होना स्वाभाविक हो गया । राष्ट्रपति निर्देश यह भी उपबंध करता है कि परामर्शी के साथ प्रत्येक संसूचना लिखित में होगी और विचारें को सरकार को संसूचित किया जाना चाहिए । इस बारे में कोई संकेत नहीं है कि यदि परामर्शियों के बीच कोई सहमति न हो या यदि बहुमत भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से सहमत न हो तो क्या होगा । एस. पी. गुप्ता ने अधिकथित किया कि विभिन्न प्राधिकारियों के बीच संपूर्ण पत्राचार और संसूचना लोक संवीक्षा के लिए खुली है (चूंकि समस्त अभिलेख उस मामले में समन किया गया था, उसका अवलोकन किया गया था और उसे सार्वजनिक कर दिया गया था) ।

भाग -III

सिफारिशें

1. जो कुछ ऊपर कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि न्यायाधीशों के मामलों I, II, III - ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 149 में रिपोर्ट किए गए एस. पी. गुप्ता बनाम भारत संघ मामले, 1993(4) एस. सी. सी. 441 में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय अभिलेख अधिवक्ता संगम बनाम भारत संघ मामले और 1998 (7) एस. सी. सी. 739 में रिपोर्ट किए गए 1998 के विशेष निर्देश I का संपूर्ण पुनर्विचारण किए जाने की अत्यावश्यक रूप से और तुरंत मांगा है जिससे कि उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया में स्पष्टता और अनुरूपता लाई जा सके ।

2. विधि विलंब : न्यायालयों में बकाया मामले संबंधी 85वीं रिपोर्ट में यही विचार प्रकट किया गया है । उसे नीचे उद्धरित किया जाता है:

''समिति इस बात से अवगत है कि इस कार्य स्थिति के लिए केंद्रीय विधि मंत्रालय को दोष नहीं दिया जा सकता है, क्योंकि नये न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए प्रस्ताव का प्रारंभ करने की संपूर्ण प्रक्रिया, अब उच्चतम न्यायालय के एक विनिश्चय के परिणामस्वरूप कार्यपालिका का उत्तरदायित्व नहीं रह गई है । यद्यपि यह संविधान

में अनुध्यात नहीं किया गया था, किंतु अब न्यायिक नियुक्तियों के लिए उत्तरदायित्व न्यायपालिका के क्षेत्र में आ गया है । अब केंद्रीय विधि मंत्री न्यायाधीशों के रिक्त स्थानों को भरने में विलंब के लिए संसद के प्रति उत्तरदायी है किंतु उसे कृत्यकारी रूप से कोई योगदान नहीं करना है । उच्चतम न्यायालय ने न्यायाधीशों को नियुक्त करने की शक्ति संविधान में पढ़ी है, जो उसको पाठ या संदर्भ द्वारा प्रदत्त नहीं की गई थी । न्यायिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का अंतर्निहित प्रयोजन प्रशंसात्मक था किंतु न्यायालय के लिए न्यायिक निर्वचन की प्रक्रिया द्वारा न्यायाधीशों को नियुक्त करने के लिए अनन्य शक्ति अर्जित करने की पद्धति पर प्रश्न किया जा सकता है । इस पृष्ठभूमि में समिति राज्यसभा में हाल में हुए विचार-विमर्श का स्मरण करती है, जिसमें सरकार से रिक्त स्थानों को भरने के लिए वैकल्पिक व्यवस्थाओं के बारे में और इस बारे में कि क्या उच्चतम न्यायालय के निर्णय का फिर से पुनर्विलोकन करने के लिए कोई गुंजाइश है, पूछा गया था ।

वह स्थिति, जो विभिन्न देशों में विद्यमान है उस पर इस समय ध्यान दिया जा सकता है । दूसरे देशों के कई संविधानों की संवीक्षा करने पर यह देखा जा सकता है कि सभी अन्य संविधानों में या तो कार्यपालिका न्यायाधीशों को नियुक्त करने के लिए एक मात्र प्राधिकारी है या कार्यपालिका देश के मुख्य न्यायमूर्ति के साथ

परामर्श करके नियुक्ति करती है । भारतीय संविधान ने पश्चात्वर्ती पद्धति को अपनाया है । तथापि दूसरे न्यायाधीशों के मामले **अभिलेख अधिवक्ता संगम बनाम भारत सरकार** (1993 (4) एस. सी. सी. 441) ने, जैसा कि हमने ऊपर विचार-विमर्श में देखा है, पूर्ण रूप से कार्यपालिका को अलग और अपवर्जित कर दिया है और राष्ट्रपतीय निर्देश (1998 का विशेष निर्देश 1) में माननीय उच्चतम न्यायालय की राय ने कुछ उपांतरणों के साथ इस विचार की पुनः पुष्टि कर दी है ।

अमेरिका में राज्य न्यायाधीशों को निर्वाचित किया जाता है । जब उनको निर्वाचित नहीं किया जाता है तब उनकी नियुक्ति विधायी सहमति के अधीन होती है । उच्चतम न्यायालय में यह राष्ट्रपति है जो न्यायाधीशों को नाम-निर्देशित करता है किंतु नाम-निर्देशन की पुष्टि सीनेट द्वारा की जानी होती है । आस्ट्रेलिया में यह कार्यपालिका है जो न्यायाधीशों को नियुक्त करती है । कनाडा में गवर्नर जनरल न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है ।

न्यूजीलैंड में मुख्य न्यायमूर्ति को राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की सिफारिश पर नियुक्त किया जाता है । प्रधानमंत्री अपनी बारी में महान्यायवादी से परामर्श करता है : महान्यायवादी अनौपचारिक रूप से कोर्ट ऑफ अपील के अध्यक्ष से और अन्य न्यायाधीशों से परामर्श करता है ।

जहां तक उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों का संबंध है मुख्य न्यायमूर्ति अन्य न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात् सिफारिश करता है और सूची को महान्यायवादी को संवीक्षा के लिए देता है । महान्यायवादी सूची की संवीक्षा करता है, न्यूजीलैंड लॉ सोसाइटी से परामर्श करता है और तदुपरि अभ्यर्थी की सहमति मांगी जाती है । तत्पश्चात् मंत्रिमंडल अंतिम रूप से गवर्नर जनरल से नामों की सिफारिश करता है, जो नियुक्ति पत्र को जारी करता है ।

हाल में केनिया के सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश उच्चतम न्यायालय में आए थे और उन्होंने सुप्रीम कोर्ट बार को संबोधित किया था । उन्हांने पुष्टि की कि उनके यहां नेशनल ज्यूडिशियल कमीशन है जो चयन प्रक्रिया को करती है । इस नेशनल ज्यूडिशियल कमीशन में महान्यायवादी और उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति, दो वरिष्ठतम न्यायाधीश और एक विशेषज्ञ हैं ।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि सभी संविधानों में, कार्यपालिका की एक भूमिका है और कुछ देशों में इसकी बड़ी और अनन्य भूमिका है । भारतीय संविधान उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए अनुच्छेद 124(2) और अनुच्छेद 217(1) के अधीन नियंत्रण और संतुलन की एक सुन्दर प्रणाली का उपबंध करता है जिसमें कार्यपालिका और

न्यायपालिका दोनों को एक संतुलित भूमिका दी गई है । जैसाकि पहले कहा जा चुका है इस कोमल संतुलन को दूसरे न्यायाधीशों के मामले (**अभिलेख अधिवक्ता संगम** बनाम **भारत संघ** 1993(4) एस. सी. सी. 4412 और राष्ट्रपतीय निर्देश (1998 का विशेष निर्देश संख्या 1) में उच्चतम न्यायालय की राय ने अस्त-व्यस्त कर दिया है ।

न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए वर्तमान प्रक्रिया का अत्यावश्यक रूप से और तुरंत पुनर्विलोकन करने की आवश्यकता के लिए उपर्युक्त सिफारिश को न्यायमूर्ति जे. एस. वर्मा द्वारा, जिन्होंने **अभिलेख अधिवक्ता** बनाम **भारत संघ** 1993(4) एस. सी. सी. 441 में प्रमुख निर्णय लिखा था, तारीख 10.10.1998 की फ्रंटलाइन पत्रिका में दिए गए एक साक्षात्कार में प्रकट किए गए अपने विचारों द्वारा और सुदृढ़ किया गया है । सुसंगत भाग नीचे पुनः प्रस्तुत किया जाता है :-

जब पूछा गया '' आपने अपने भाषणों में से एक में यह कहा था कि न्यायिक नियुक्तियां न्यायिक निराशाएं हो गईं हैं । क्या अब आप अपने 1993 के निर्णय पर दुख अनुभव करते हैं ? न्यायमूर्ति वर्मा ने कहा ''मेरे 1993 के निर्णय को, जो प्रभुत्व रखता है, बहुत अधिक गलत समझा गया है और उसका गलत उपयोग किया गया है । यह उस संदर्भ में मैंने कहा था, निर्णय का कार्यान्वयन अब कुछ समय

से ऐसे गंभीर प्रश्न उठा रहा है, जिन्हें अयुक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता । अतः कुछ पुनर्विचारण अपेक्षित हैं । मेरा निर्णय कहता है कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया आधारभूत रूप से कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच संयुक्त रूप से या सम्मिलित रूप से,जिसमें दोनों भाग ले रहे हों, की जाने वाली प्रक्रिया है ।

व्यापक रूप से ये दो भिन्न क्षेत्र हैं एक अभ्यर्थियों की विधिक कुशाग्रता का, उनकी उपयुक्तता का,अधिनिर्णय करने के लिए क्षेत्र है और दूसरा उनके पूर्ववृत्तों के लिए है । यह न्यायपालिका है अर्थात् भारत का मुख्य न्यायमूर्ति और उसके सहयोगी या उच्च न्यायालयों की दशा में, उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति और उसके सहयोगी (जो) विधिक कुशाग्रता का अधिनिर्णय करने के लिए सर्वोत्तम व्यक्ति हैं । उनकी आवाज प्रमुख होनी चाहिए । जहां तक पूर्ववृत्तों का संबंध है, अभ्यर्थी के पूर्ववृत्तों को जानने के लिए कार्यपालिका न्यायपालिका से अधिक अच्छी स्थिति में है । अतः मेरे निर्णय ने कहा कि विधिक कुशाग्रता के क्षेत्र में न्यायपालिका की राय प्रमुख होनी चाहिए और पूर्ववृत्तों के क्षेत्र में कार्यपालिका की राय प्रमुख होनी चाहिए । एक साथ दोनों को नियुक्ति के लिए उपलब्ध (अभ्यर्थियों में से) अत्यधिक उपयुक्त व्यक्ति खोजने का कार्य करना चाहिए ।

विधि और न्याय संबंधी संसदीय स्थायी समिति के विचारों ने उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्तियों और स्थानांतरणों के लिए वर्तमान प्रक्रिया के समाप्त कर देने के लिए सिफारिश की, जो इस संदर्भ में अत्यधिक सुसंगत है । जैसाकि 20.10.2008 के हिंदुस्तान टाइम्स में रिपोर्ट किया गया है कि "विधि मंत्रालय, विधि और न्याय संबंधी संसदीय स्थायी समिति द्वारा कालेजियम (न्यायाधीश - समिति) को समाप्त करने की सिफारिश किए जाने के पश्चात् 15 वर्ष पुरानी पद्धति का पुनर्विलोकन करने के लिए सहमत हो गया है । वर्तमान में कालेजियम न्यायाधीशों की नियुक्तियों और स्थानांतरणों का विनिश्चय करता है । रोचक रूप से, सिफारिशें देश में शीर्षस्थ न्यायालयों के न्यायाधीशों के विरुद्ध भ्रष्टाचार के हाल के मामलों के साथ आई हैं । विधि मंत्री एच. आर. भारद्वाज ने हिंदुस्तान टाइम्स से कहा कि सदन की समिति की सिफारिश स्वीकार कर ली गई थी और मंत्रालय द्वारा तैयार की गई कार्रवाई रिपोर्ट अब संसद के समक्ष रखी जाएगी । "कालेजियम पद्धति असफल हो गई है । नियुक्तियों और स्थानांतरणों पर उसके विनिश्चयों में पारदर्शिता की कमी है और हम अनुभव करते हैं कि न्यायालयों को गुणागुण पर न्यायाधीश नहीं मिल रहे हैं । (.....) सरकार ऐसे गंभीर मुद्दे पर मूक दर्शक बनकर नहीं रह सकती ।" भारद्वाज ने कहा । सदन की समिति ने कहा था : "1993 में उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय के माध्यम

से न्यायपालिका ने न्यायाधीशों की नियुक्तियों और स्थानांतरणों का नियंत्रण हथिया लिया था । कालेजियम पद्धति एक सर्वनाश रही है और इसको समाप्त किए जाने की आवश्यकता है'' विधि और न्याय मंत्री एच. आर. भारद्वाज ने कहा ''यह सही समय है कि इस महत्वपूर्ण विषय का पुनर्विलोकन किया जाए ।'' ''1993 तक, जब न्यायपालिका ने नियुक्तियों के संबंध में संविधान के अनुच्छेद को पुनः लिखने का प्रयास किया था, कोई समस्या नहीं थी । उन्होंने कालेजियम की एक नई विधि का सृजन किया, जो गलत थी । किसी प्रजातंत्र में संसद की प्रमुखता पर आपत्ति नहीं की जा सकती'', उन्होंने कहा ।

विभागीय कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय संबंधी संसदीय स्थायी समिति के अध्यक्ष ने अपनी 28वीं रिपोर्ट अगस्त 2008 को माननीय राज्यसभा के सभापति को प्रस्तुत करते हुए यह कहा है :-

'' मैं यह कहकर उपसंहार करूंगा कि सरकार को शीघ्र इसे देखना चाहिए कि उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति पारदर्शी रूप में की जाती है । हमने दो प्रकार की सिफारिशें की हैं : एक यह है कि हमें यह देखना है कि कालेजियम पद्धति समाप्त की जाए क्योंकि नियुक्तियों में विलंब होगा, अतः हमने कहा है कि पात्र व्यक्तियों की पहचान करने के लिए प्रारंभ से ही सिफारिशों के विभिन्न स्थान, चाहे वह उच्च न्यायालयों के स्तर

पर हो या राज्यपाल के स्तर पर या विभागों के स्तर पर और अंतिम रूप से उच्चतम न्यायालय हो, पारदर्शी होने चाहिए और तत्पश्चात् इसे वेबसाइट पर रखा जाना चाहिए, जिससे कि उस व्यक्ति के बारे में, जो संवैधानिक स्थिति ग्रहण करने जा रहा है, जनता को जानकारी मिल जाए और उसकी पृष्ठभूमि के बारे में जनता को विचार-विमर्श करने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए और अंतिम रूप से भारत के राष्ट्रपति द्वारा वारंट जारी करके प्रक्रिया की जानी चाहिए । किंतु इस समय जो हो रहा है वह यह है कि व्यक्ति की पहचान करने के प्रथम दिन से वारंट जारी किए जाने तक किसी को भी कुछ ज्ञात नहीं होता है सिवाए उन व्यक्तियों को, जो उसमें अंतर्वलित हैं । वे व्यक्ति भी जिन की पहचान की जाती है और जो उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने वाले होते हैं, हो सकता है इस बारे में न जानते हों । इस प्रकार की गोपनीयता प्रजातंत्र के लिए अच्छी नहीं है ।''

इस संदर्भ में यह नोट किया जा सकता है कि प्रत्येक उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायमूर्ति सरकार की नीति के अनुसार राज्य के बाहर से होता है । वरिष्ठतम न्यायाधीश भी जो कालेजियम बनाते हैं, राज्य के बाहर से होते हैं । परिणामस्वरूप स्थिति यह होती है कि कालेजियम का गठन करने वाले न्यायाधीश अभ्यर्थियों के नामों और पूर्ववृत्तों से अवगत नहीं होते हैं और बहुधा नियुक्तियां पर्याप्त

जानकारी के अभाव में होती है ।

आज की सरकार को दो विकल्प उपलब्ध हैं एक माननीय उच्चतम न्यायालय से पूर्वोक्त तीनों निर्णयों का पुनर्विचारण करने के लिए मांग करना है । अन्यथा एक विधि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की प्रमुखता को और कार्यपालिका की नियुक्तियां करने की शक्ति को प्रत्यावर्तित करते हुए पारित की जा सकती है ।

ह. —

(डा. न्यायमूर्ति एआर. लक्ष्मणन्)

अध्यक्ष

ह. —

(प्रा. (डा) ताहिर महमूद)

सदस्य

ह. —

(डा. ब्रह्म ए. अग्रवाल)

सदस्य-सचिव

दिनांक : 21.11.2008